B.A. History. Hon's, Part: II
Paper: III, Unit: I, Date: 4.11.2020 Lecture No.: 3
Lession:- चोल प्रशासन

भारत के सुदूर दक्षिण में प्रारम्भिक मध्य काल में तुंगभद्रा नदी के दक्षिण के सम्पूर्ण प्रदेश में चोल जनजातीय राजवंश विशाल एवं शक्तिशाली राज्य था, जिन्होंने दक्षिण पूर्वी एशियाई द्वीपों में भारतीय संस्कृति का प्रसार किया। भारतीय इतिहास में चोल शासन अपनी प्रबल नौसैनिक शक्ति और स्थानीय स्वायत्त शासन के लिए प्रसिद्ध है। इस राजवंश की स्थापना दूसरी शताब्दी में चोल सेना नायक करिकाल ने चेरों और पांड्यों को पराजित की थी। प्रारम्भिक मध्यकाल की राजनीतिक अस्थिरता के दौर में चोलों को अपने क्षेत्रीय एवं राजनीतिक शक्ति के विस्तार का अवसर मिला और इस राजवंश के राजराज और राजेन्द्र चोल जैसे प्रतापी राजाओं ने सुदूर दक्षिण में चोल राज्य की शक्ति का असाधारण विस्तार किया। चोलों ने न केवल अपनी राज्य शक्ति का विस्तार किया, अपितु कुशल प्रशासकीय क्षमता का उपयोग करते हुए इसे संगठित भी किया। खासकर स्थानीय स्वायत्त शासन प्रणाली भारतीय इतिहास में चोलों की अनुपम देन मानी जाती है।

चोल सम्राटों ने केन्द्र से लेकर ग्राम स्तर तक एक सुव्यवस्थित शासन का प्रबन्ध किया। शासन का स्वरूप राजतंत्रात्मक होते हुए भी यह विकेंद्रित स्थानीय स्वायत्त शासन के प्रशस्त आधार पर टिका हुआ था। दक्ष नौकरशाही तंत्र और प्रबुद्ध स्थानीय स्वशासन का चोल प्रशासन में अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। केन्द्रीय प्रशासन की धुरी स्वयं सम्राट होता था, जिसे राज कार्य में युवराज के अतिरिक्त तीन केन्द्रीय प्रशासनिक संवर्ग के पदाधिकारी एवं कर्मचारी, सहयोग प्रदान करते थे। पहला संवर्ग उच्च पदाधिकारियों का था, जिसमें प्रधान सचिव सहित अन्य सचिवगण होते थे। इन्हें ओलैनायकम कहा जाता था। दूसरे संवर्ग के अन्तर्गत कर्मचारी प्रमुख आते थे, जिन्हें पेरुन्दरम् कहा जाता था। तीसरी कोटि सामान्य कर्मचारियों का था, जो विडैयाधिकारिन कहलाते थे। चोल सम्राटों के सचिवालय में इन तीनों कोटियों के सचिव एवं कर्मचारी सारे प्रशासनिक कार्यों का निपटारा करते थे।

केन्द्रीय सचिवालय की तरह सैन्य संगठन भी राजा और युवराज के प्रत्यक्ष नियंत्रण में काम करता था, जो स्वयं सेना के गठन हेतु शांतिकाल तथा युद्ध में नेतृत्व करते थे। चोलों के पास एक शक्तिशाली सेना थी जो स्थल तथा जल सेना में विभाजित थी। स्थल सेना में पदाति, अश्वारोही, गजारोही सैनिक होते थे। चोल अभिलेख के अनुसार चोल सेना 70 टुकड़ियों में विभाजित थी और प्रत्येक टुकड़ी का अलग-अलग सेना नायक होता था। सैनिकों को राज्य के सामरिक महत्व के प्रमुख स्थलों पर बने शिविरों में रखा जाता था। राजा और युवराज की एक विशाल रक्षावाहिनी सेना अलग से होती थी। सैनिकों को वेतन के रूप में भूमि और विजयोपरान्त पुरस्कार दिये जाते थे।

केन्द्रीय शासन के तीसरे अंग के रूप में न्यायपालिका की चर्चा की जा सकती है। स्वयं राजा के द्वारा ही न्याय का वितरण किया जाता था। प्रत्यक्ष उपस्थित किए गये या फिर अपीलीय मामलों में राजा स्वयं अंतिम न्याय प्रदान करता था। इस सर्वोच्च न्यायाधिकरण के अलावे न्याय कार्य को स्वायत्त शासन के हवाले छोड़ दिया गया था।

राजकीय सचिवालय के अधीन विडैयाधिकारिन (कर्मचारी) राजस्व की उगाही का काम करते थे। भूमि, वाणिज्य और शिल्प, राजस्व के तीन स्रोत थे। मंदिर, सार्वजनिक संस्था और कर्मचारियों एवं सैनिकों की भूमि कर मुक्त होती थी। ग्राम स्तर पर करों की उगाही ग्राम सभा के द्वारा की जाती थी।

चोल साम्राज्य का ढांचा पिरामिडनुमा था। पूरे साम्राज्य को राष्ट्रम कहा जाता था। राष्ट्र मंडलों में विभाजित होते थे। मदुरा, केरल, चोलपुरम आदि चोल साम्राज्य के प्रमुख मंडल थे, जिनके पदाधिकारी महामंडलेश्वर कहे जाते थे। महामंडलेश्वर के पद पर राज परिवार के सदस्य ही नियुक्त किये जाते थे। इनके अधीन मंडलाधिकारी होते थे जो सैनिक तथा नागरिक दोनों कोटि के होते थे। इनका प्रमुख कार्य मंडल पर राजकीय नियंत्रण को पुख्ता करना होता था। मंडल नाडु अर्थात् जिला में विभाजित होते थे। नाडु ग्राम समूहों में विभाजित होता

जिसे कुरम कहा जाता था। कुरम गावों में विभाजित होता था, ~~जिसे कुरम कहा जाता था~~ जो ग्राम सभा के अधीन होता था जिसे उर कहा जाता था। नाडु (जिला) तथा कुरम (अंचल) के स्तरों पर ग्राम सभा की भांति समितियां होती थी जिसमें कृषकों शिल्पियों और व्यापारियों के प्रतिनिधि होते थे। जाहिर है कि साम्राज्य के शासन में नृपतंत्र तथा लोकतंत्र का सुन्दर समन्वय किया गया था।

शासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम सभा थी। तीस सदस्यीय ग्राम सभा के सभासदों का निर्वाचन प्रत्येक टोले को इकाई मानते हुए लाटरी पद्धति से होती थी। सभासद निर्वाचित होने के लिए न्यूनतम एक एकड़ के लगभग भूमि का स्वामी, अपना भवन और तीस से सत्तर वर्ष के बीच आयु का होना जरूरी था। साथ ही यह आवश्यक था स्वयं सभासद प्रत्याशी अथवा उसके परिवार का कोई सदस्य कभी किसी अपराध के दंड का भागी न बना हो। सभासद का कार्यकाल प्राय: ढाई वर्ष का होता था।

उपसमितियों के माध्यम से ग्राम सभा गावों के समस्त सार्वजनिक, न्यायिक, शैक्षिक, कृषि, शिल्प, धार्मिक, परिवहन, उपवन आदि के कार्यों का सम्पादन करती थी। चोल अभिलेखों के अनुसार ग्राम उपसमितियों में सामान्य प्रबन्धन, उपवन, सिंचाई, कृषि, लेखा-जोखा, भूमि प्रबन्ध, शिक्षा, न्याय, मार्ग, देवालय प्रबन्धन और स्वर्ण समितियों के नाम उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार ग्राम सम्बन्धी प्रशासनिक एवं सार्वजनिक कार्य ग्राम सभा के अधीन थे। गाँव में शांति, न्याय, तथा लोगों की सुरक्षा की ~~सुरक्षा~~ की जिम्मेवारी भी ग्राम सभा की होती थी। ग्राम सभा के बैठक में कुरम (अंचल) और नाडु के प्रतिनिधि उपस्थित रहते थे, जो न केवल ग्राम सभा के कार्यों की रिपोर्ट लेते थे, बल्कि ग्राम सभा को राजकीय निर्णय से ग्राम सभा को अवगत भी कराते थे। दो ग्रामों के बीच विवादों का निपटारा कुरम तथा नाडु के पदाधिकारी करते थे। ग्राम सभा अवैतनिक संगठन था। चोल शासन में कुरम (अंचल) तथा नाडु जिला के शासन में गुप्त प्रशासन की तरह कृषकों, शिल्पियों तथा वणिजों को प्रतिनिधित्व दिया गया था। राजस्व उगाही का कार्य ग्राम सभा के प्रधान के द्वारा किया जाता था।

जाहिर है कि चोल सम्राटों ने केन्द्र से लेकर ग्राम स्तर तक एक व्यवस्थित एवं सुसंगठित शासन प्रणाली को विकसित किया था, जिसमें राजतंत्र तथा लोकतंत्र के बीच समन्वय करते हुए, दोनों को एक दूसरे का पूरक बनाया गया था। नीलकंठ शास्त्री के अनुसार चोल प्रशासन शासन की दक्षता और श्रेष्ठता की दृष्टि से सम्भवतया हिन्दू राजतंत्र का सर्वोच्च स्तर था।

डॉ० शंकर जय किशन चौधरी
अतिथि शिक्षक, इतिहास विभाग
डी० बी० कॉलेज, जयनगर.